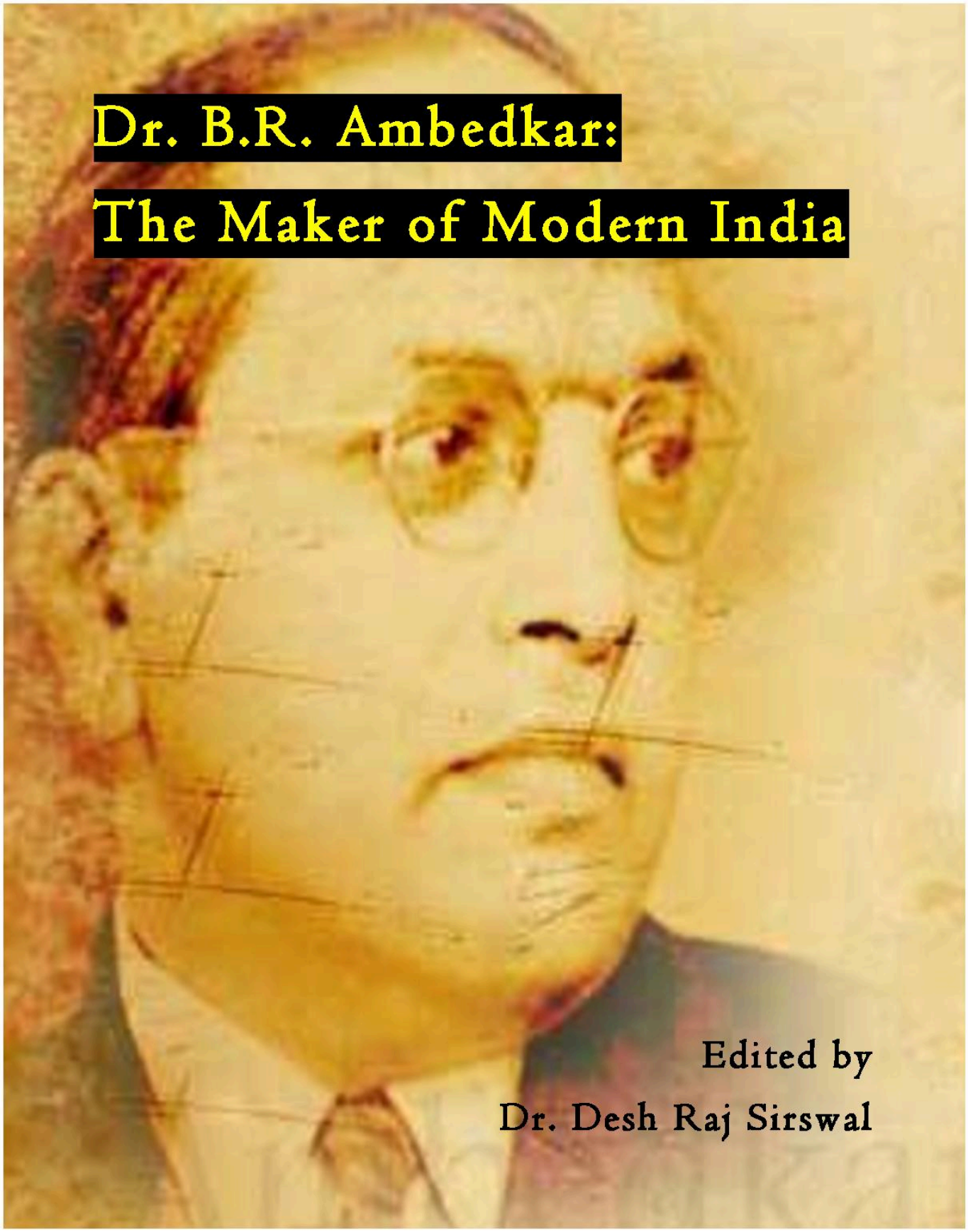

Dr. B.R. Ambedkar: The Maker of Modern India

Edited by

Dr. Desh Raj Sirswal

Dr. B.R. Ambedkar: The Maker of Modern India

Edited by

Dr. Desh Raj Sirswal

Centre for Positive Philosophy and Interdisciplinary Studies (CPPIS),
Milestone Education Society (Regd.), Pehowa (Kurukshetra)-136128
(HARYANA)

Dr. B.R. Ambedkar: The Maker of Modern India

Editor: Dr. Desh Raj Sirswal

ISBN: 978-81-922377-8-7

First Edition: April 2016

© Centre for Positive Philosophy and Interdisciplinary Studies (CPPIS), Pehowa (Kurukshetra)

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in or introduced into a retrieval system, or transmitted in any form or by any means (electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise), without the prior written permission of both the copyright owner and the above mentioned publisher of this book.

Editor:

Dr. Desh Raj Sirswal, Assistant Professor (Philosophy), P. G. Govt. College for Girls, Sector-11, Chandigarh

Publisher:

Centre for Positive Philosophy and Interdisciplinary Studies (CPPIS), Milestone Education Society (Regd.), Balmiki Dharmashala, Ward No.06, Pehowa (Kurukshetra)-136128 (Haryana) Website: http://positivephilosophy.webs.com , Email: cppiskkr@gmail.com

Disclaimer:

The opinions expressed in the articles of this book are those of the individual authors, and not necessary of the Editor. Authors are responsible for any violation of copyright as they produced a certificate of original authorship while submitting the full paper. (Editor).

This book is dedicated to

The Greatest Indian Dr. B.R. Ambedkar

Table of Contents

Editor's Note- Desh Raj Sirswal (6-7)

1. THE STRUGGLE FOR HUMAN DIGNITY: DR. B.R. AMBEDKAR'S PERSPECTIVE: Jayadev Sahoo (08-19)
2. DR. B.R. AMBEDKAR'S IDEAS ON EGALITARIAN SOCIETY AND HINDU SOCIAL SYSTEM: THE CIRCULATION OF SOCIAL JUSTICE IN 21st CENTURY: Deepesh Nandan (20-27)
3. NEW CONCEPTUALISATION OF MAN AND SOCIETY: ROLE OF DR.B.R.AMBEDKAR: Bhumika Sharma (28-30)
4. SOCIAL PHILOSOPHY OF DR. B.R. AMBEDKAR BEHIND EDUCATION: Harmandeep Kaur (31-36)
5. DR. B.R. AMBEDKAR AS A SOCIAL REFORMER: Hiralal Mahato & Urmi Saha (37-43)
6. DR. BHIM RAO AMBEDKAR AND HIS EDUCATIONAL PHILOSOPHY: Sanjeev Kumar (44-49)
7. Dr. B.R. AMBEDKAR'S THOUGHTS ON SOCIAL REFORMS AND JUSTICE: Anu Khanna (50-55)
8. SOCAL JUSTICE AND DR. B.R. AMBEDKAR: Devinderjit Kaur (56-61)
9. DEMOCRACY IN INDIA: PERSPECTIVE OF DR.B. R. AMBEDKAR: Ritika (62-67)
10. B.R.AMBEDKAR'S VIEWS ON LIBERTY AND EQUALITY- A STUDY: M.Sampathkumar (68-76)
11. DR. BHIMRAO AMBEDKAR'S CONTRIBUTION IN THE DEMOCRATIC RIGHTS STRUGGLE: Desh Raj Sirswal (77-86)
12. RELIGIOUS IDEAS OF DR. BHIMRAO AMBEDKAR: Madhubala Kumari (87-91)

Contributors

II.

लोकतान्त्रिक अधिकारों के संघर्ष में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का योगदान

डॉ. देशराज सिरसवाल

शोध-सारांश

लोकतान्त्रिक अधिकार वर्तमान समय का महत्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रश्न बन चुका है। देश के भौतिक और आर्थिक विकास की कीमत आम लोगों के लोकतान्त्रिक अधिकारों के हनन के द्वारा दी जा रही है। वर्तमान परिस्थितियाँ किसी सम्भावित सामाजिक क्रांति की ओर अग्रसर कर रही है। पिछली शताब्दी की जिस सामाजिक क्रांति की बदौलत भरत में आज हम स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व की बात करते हैं, उसमें साहूजी महाराज, ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु और डॉ. अम्बेडकर का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इन तमाम महापुरुषों के संघर्ष के परिणाम स्वरूप ही हमें बोलने की, लिखने की, अपनी मर्जी से पेशा चुनने की, संगठन खड़ा करने की व मीडिया चलाने की आजादी मिली है अन्यथा जातिगत भेदभाव को गलत नही माना जाता, छुआ-छुत को कानून में अपराध घोषित नही किया जाता, स्त्री स्वतन्त्रता की बात कौन करता? राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोकतान्त्रिक अधिकारों के संघर्ष पर हमें बहुत कुछ पढ़ने और सुनने को मिलता है लेकिन जब भी हम भारत के विद्वानों की तरफ देखते हैं तो आमतौर पर डॉ. अम्बेडकर जी को केवल दलितों के मसीहा और संविधान का रचयिता भर कह कर बात खत्म कर दी जाती है। चाहे हम इसे लोकतान्त्रिक अधिकार कहें या मानवाधिकार कहें, डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक ऐसे व्यक्ति है जिनके सामाजिक योगदान को हम नकार नही सकते क्योंकि उनके विचारों और संघर्ष का प्रभाव आज हम भारतीय समाज पर निर्विवाद देख सकते हैं। प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के योगदान को वर्तमान लोकतान्त्रिक अधिकारों के संघर्ष के इतिहास के संदर्भ में अध्ययन करना है।

परिचय

सामान्य लोग या किसी एक विशेष क्षेत्र से जुड़े लोग लोकतान्त्रिक अधिकारों के बारे में जानना चाहते हैं। लोकतान्त्रिक अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो कि हमें भारतीय संविधान के द्वारा दिए गये है। आमतौर पर इन अधिकारों का सम्बन्ध शहरों में रहने वाले पढ़े-लिखे लोगों से लिया जाता है जो अपने विशेष अधिकारों के लिए आवाज उठाते हैं, लेकिन इसमें उन सभी प्रयासशील लोगों को सम्मिलित किया जा सकता है जोकि लोगों को उनके अधिकारों के प्रति

जागरूक करते है, विशेष अभियान चलाते है, रिपोर्ट या जागरूकता सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन करते हैं। भारत में लोकतान्त्रिक अधिकारों का संघर्ष लगभग उपनिवेशक समाज में स्वतन्त्रता संग्राम के समय में ही शुरु हुआ, जब राजनीतिक शक्ति ब्रिटिश शासन से भारतीयों की तरफ अग्रसर हुई। बेशक 24 अगस्त 1936 को ''आल इण्डिया सिविल लिबर्टीज'' के रूप में लोकतान्त्रिक अधिकारों का संघर्ष संगठित रूप में हमारे सामने आता है लेकिन इनकी जड़े हमें 19वीं शताब्दी के शुरुआत में मिलती है, जब विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता और प्रेस की स्वतन्त्रता, कानून के समक्ष समानता और रंगभेद पर आधारित असमानता की मुहीम शुरु हुई।[1]

एक लोकतान्त्रिक समाज में यह स्पष्ट होता है कि सभी नागरिकों को समान लोकतान्त्रिक अधिकार प्राप्त हो। लेकिन भारतीय समाज की वर्तमान स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है, क्योंकि सामाजिक स्थिति के साथ ही अधिकार भी बदल जाते हैं, बेशक हमें कानूनी रूप से देश द्वारा समान अधिकार का दावा किया जाता है। लेकिन सामाजिक अवधारणाएं, सामाजिक अंधविश्वास, सामाजिक अशुभों के जकड़े लोग जोकि देश की ज्यादातर शक्ति पर अपना वर्चस्व रखते हैं, सभी को इन अधिकारों से वंचित कर देते हैं। भ्रष्टाचार, हिंसा, गंदी राजनीति, गरीबों का शोषण आदि कार्यो द्वारा ये निरंकुश शक्तियाँ देश के संविधान और न्याय व्यवस्था को ठेंगा दिखाकर लोकतन्त्र को कमजोर कर रही है। महिलाओं, दलितों, कमजोर और आदिवासियों आदि पर किये जाने वाले शोषण में लगातार वृद्धि हो रही है।

भारतीय संविधान एवं जोकतान्त्रिक कानून

वर्तमान समय में लोकतान्त्रिक अधिकारों की स्थिति पर कृष्ण सिंह टिप्पणी करते हैं, ''आजादी के बाद हमने जो संविधान अपनाया और बाद में उसमें समय-समय पर जो संशोधन किए उसे वास्तविक अर्थो में समानता पर आधारित एक लोकतान्त्रिक समाज की ओर मजबूती से बढ़ते हुए अब तक जाति, संस्कृति और धर्म के तमाम दबावों से मुक्त हो जाना चाहिए था। स्वतन्त्रता के इन 67 वर्षो में दलितों, आदिवासियों, गरीबों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों की स्थिति के मद्देनजर क्या यह कहा जा सकता है कि सचमुच में हमारा समाज और व्यवस्था एक उदार एवं लोकतान्त्रिक है? क्या हम कह सकते हैं कि हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था महज चुनाव करवाने तक सीमित नहीं है? और सीमावर्ती राज्यों खासकर जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर में लोकतन्त्र की वास्तविक स्थिति क्या है? समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ी व्यापक आबादी के लिए भारतीय लोकतन्त्र के क्या मायने हैं? भारतीय समाज में पहले से मौजूद साम्प्रदायिकता जिस तेजी से अपनी जड़ें मजबूत कर रही है और

शहरों से लेकर अब गाँवों और कस्बों में बहुत गहरे तक अपनी पैठ बना रही है। पिछले दिनों पश्चिम उत्तरप्रदेश में हुए व्यापक और सुनियोजित दंगे इसका ताजा उदाहरण हैं। यह प्रवृत्ति धर्मनिरपेक्षता को नेस्तनाबूद करने पर तुली है।''[12] आगे वह लिखते हैं, ''अगर हम अपनी वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था को देखे तो इसने अपने ही नागरिकों के एक व्यापक हिस्से के लिए समान नागरिक अधिकारों के उनके मूलभूत अधिकार को असंभव बना दिया है। आखिर यह किस तरह का लोकतन्त्र है जहाँ लोकतन्त्र के नाम पर सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून के जरिए विभिन्न सीमांत क्षेत्रों में नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे लोगों का दमन किया जाता हो या आतंकवाद से लड़ाई के नाम पर अल्पसंख्यक समुदाय को प्रताड़ित किया जा रहा हो। आखिर यह कैसी लोकतान्त्रिक व्यवस्था है जो साम्प्रदायिकता को 'विकास' के पर्याय में बदल देती हो?''[13]

अभिषक श्रीवास्तव भारत की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहते है, ''भारत में जो संवैधानिक प्रशासन का मॉडल स्वीकार किया गया है, उसे बुर्जुआ लोकतन्त्र कहते हैं। यह भीतर से ही बुर्जुआ के हितों की सेवा करने की ओर ही प्रवृत्त है जो कि जनता के प्रबंधन का एक उपकरण है। इस प्रक्रिया में जनता को लाभ तो अवश्य मिलता है, लेकिन ऐसा विशुद्ध पूंजीवादी रणनीति के तौर पर ही होता है जिसमें दूसरों के मुकाबले अपने मजदूरों को बेहतर मजदूरी दी जरती है ताकि लम्बे समय तक अपना मुनाफा बना रहे। इसके साथ ही मालिक मजदूरों में विभाजन भी पैदा करता है ताकि उनके भीतर सामूहिक मोलभाव की ताकत पैदा न हो सके। बुर्जुआ लोकतन्त्र ऐसे ही काम करता है। भारत में यह मॉडल 'प्रबंधन' की इस रणनीति के पार जाता है और इसे अपनी सामंती विरासत का इस्तेमाल करते हुए निचले वर्गो के खिलाफ होने में कोई दिक्कत नही आती। जिस तरीके से नीतियों को बुर्जुआजी के पक्ष में धोखे से इस्तेमाल किया है, जिस तरीके से संविधान के माध्यम से इसने लोागों को सपना दिखाया और जिस तरीके से इसने जनता के प्रतिरोध को कुचल दिया, यह इसकी सामंती प्रकृति को दिखाता है। इसने बेशक जातियों को बनाए रखने और पहचान की राजनीति को हवा देने का षड्यंत्र किया है। जाहिर तौर पर नवउदारवादी नीतियों से बुर्जुवा लोकतन्त्र की तमाम प्रचलित बुराइयों को बड़े पैमाने पर बढ़ा दिया है।''[14]

वर्तमान समय में लागू कानून भी उपरोक्त स्थिति को मजबूत कर रहे हैं। भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1950 को लागू हो गया था किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा बनाए गये कानूनों को अभी तक प्रतिस्थापित नही किया गया है। मणिराम शर्मा के अनुसार, ''हमारे संविधान के लोकतान्त्रिक प्रावधानों को मूर्तरूप देने के लिए पुराने सम्राज्यवादी कानूनों व नए न्यायिक दृष्टान्तों की समीक्षा कर नए कानून

बनाए जाने चाहिए थे। बहुत से प्रावधान अभी भी हमारे संविधान तक ही सीमित है व कोई संसदीय कानून उनकी व्याख्या नही करते है जिससे न्यायपालिका को मनमानी व्याख्या करने का खुला अवसर उपलब्ध होता है। देश में न्यायिक जगत् में नियन्त्रण एवं अनुशासन का अभाव स्पष्ट है। ब्रिटिश कानून इस दृष्टिकोण से बनाये जाते थे कि विदेशियों द्वारा देशी लोगों पर शासन करना तथा सम्राज्य का खजाना भरना आसान हो सके। हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था ने भी इसी परम्परा का निर्वाह कर सत्तासीन लोगों के लिए स्वछन्दता को आसान बनाया है। यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता का नवीनीकरण किया गया है किन्तु इसमें मौलिक परिवर्तन नही किया गया है, यह मूलत: दण्ड प्रक्रिया संहिता 1898 पर ही आधारित है। भारतीय गणराज्य की शासन व्यवस्था व कानून एवं न्याय प्रणाली में अभी भी साम्राज्यवाद की छवि दिखाई देती है। हमारी संसद समयानुकूल कानूनों का निर्माण करने में विफल है। अतएव हमें पुराने सम्राज्यवादी कानूनों से ही काम चलाना पड़ता है। हमें समस्त पुराने कानूनों की समीक्षा करनी चाहिए कि क्या ये संविधान के अनुरूप है?''[15]

लोकतान्त्रिक अधिकारों के संदर्भ में मणिराम आगे कहते है, ''यद्यपि इसी अवधि में इंग्लैड ने (सम्राट के अधीन होते हुए भी) कानून में संशोधन कर लोकतान्त्रिक मूल्यों का संरक्षण किया है और हमने पूर्णत: स्वतन्त्र एवं संप्रभू होकर भी न तो नए कानूनों का निर्माण किया और न ही इंग्लैड के नए कानूनों का अनुसरण करना सीखा है। जबकि इंग्लैड आज हमसे काफी आगे निकल गया है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता जीवन का अमूल्य अधिकार है तथा संविधान के अनुच्छेद 20 से 22 तक में इसका प्रावधान है किन्तु इन अमूल्य मूलाधिकारों की व्याख्या पर संसद ने आज तक कोई व्यापक कानून का निर्माण नही किया है। परिणामस्वरूप न्यायाधीश, वकील एवे पुलिस अपनी सुविधानुसार इनकी व्याख्या करते रहते है। आज आपराधिक न्याय तन्त्र में गिरफ्तारी एवं जमानत भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा स्रोत है। हमारे राष्ट्रीय पुलिस आयोग की तीसरी रिपोर्ट में भी कहा गया है कि 60% से अधिक गिरफ्तारिया अनावश्यक होती है तथा वह पुलिस में भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा स्रोत है तथा इन गिरफ्तारियों पर जेलों में कुल बजट का 43.2% भाग व्यय होता है। खेद का विषय है कि 11-07-1978 को प्रस्तुत इस रिपोर्ट पर हमारी माननीय संसद द्वारा आज तक गम्भीर चिंतन कर कोई कानून नही बनाया गया है जबकि इंग्लैड में जमानत के विषय में 75 धाराओं वाला अलग से - एक व्यापक संहिताबद्ध कानून जमानत अधिनियम 2000 बनाकर न्यायलय एवं पुलिस को सीमित कर दिया गया है। यद्यपि भारतीय उच्चतम न्यायलय ने जोगिन्द्र कुमार (1994) के मामले में कहा है कि जघन्य अपराध को छोड़कर पुलिस को गिरफ्तारी को टालना चाहिए तथा मजिस्ट्रेट को इन निर्देशों की

अनुपालना सुनिश्चित करनी चाहिए। किन्तु व्यवहार में पुलिस अनावश्यक गिरफ्तारियाँ करती है और मजिस्ट्रेट फिर भी जमानत से इंकार कर अभिरक्षा में भेजते रहते हैं। यदि स्वयं गिरफ्तारी ही अनावश्यक एवं अन्यायपूर्ण हो तो अभिरक्षा किस प्रकार न्यायोचित हो सकती है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 20 (3) में अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य न देने का संवैधानिक अधिकार है किन्तु पुलिस यातनाएं एवं इस अधिकार का उल्लंघन आज देश में सर्वविदित है। हमारी संसद ने इस दिशा में किसी कानून का निर्माण नही किया है। यद्यपि कुछ न्यायिक दृष्टान्तों में इस अधिकार को माना गया है किन्तु न्यायिक दृष्टान्त किसी अधिनियमित कानून का स्थान नही ले सकते तथा उन पर मतभेद रहता है।...आज पुलिय अभिरक्षा में मृत्यु, यातनाएं व अमानवीय व्यवहार एवं फर्जी मुठभेड़ में मृत्यु हमारे यहाँ बहुत ही सामान्य बातें बन गयी हैं जिनके विषय में अलग से संहिताबद्ध कानून की आवश्यकता है।... हमारी लोकतान्त्रिक व समाजवादी सरकार को चाहिए कि उक्त विदेशी कानूनों का भारतीय संदर्भ में लाभप्रद अध्ययन कर समुचित कानून बनाये।''[16]

भारत में मानवाधिकारों की स्थिति के बारे में राजकिशोर जी इस प्रकार सचेत कर रहे हैं, ''भारत का शक्तिशाली वर्ग कागज पर या भाषणों पर मानव अधिकारों के प्रति चाहे जितनी प्रतिबद्धता जाहिर करे, वास्तविक जीवन में यह प्रतिबद्धता बहुत ही कम दिखाई देती है, यहाँ तक की सामान्य शिष्टाचार का भी पालन नही किया जाता। ऐसे माहौल में मानव अधिकावादी सहज ही सामाजिक कौतुहल का विषय बनता है, जब वह पुलिस हिरासत में मौत, कैदियों के साथ दर्व्यवहार और आतंकवाद से मुठभेड़ के नाम पर की जाने वाली गैरजरूरी हिंसा और दमन का विरोध करता है। अपराधी या अभियुक्त को भी सहानुभूति की नजर से देखा जा सकता है या देखा जाना चाहिए तथा सेना और पुलिस को क्रूर, निर्दयी और अराजक नहीं होना चाहिए। यह विचार तीसरी दुनिया में अभी लोकप्रिय नहीं हो पाया है, हाँ आन्दोलनकारियों के साथ की जाने वाली सरकारी हिंसा के प्रति असंतोष जरूर बना हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि तीसरी दुनिया में मानव अधिकारों की वकालत करने वाले लोग सिर्फ दमन और अत्याचार के खिलाफ ही आवाज नही उठाएंगे, बल्कि वंचित लोगों के आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकारों की भी लड़ाई लड़ेंगे।''[17]

उपरोक्त समस्याओं की सम्भावनाओं को देखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने गम्भीर चेतावनी देते हुए कहा था, '26 जनवरी 1950 को हम विरोधाभासों के क्षेत्र में प्रवेश करने जा रहे हैं। एक तरफ जहाँ हमारे राजनीतिक क्षेत्र में समानता होगी, वही हमारी परम्पराओं के कारण सामाजिक और आर्थिक जीवन में असमानता बनी रहेगी। हमें इस अन्तर्विरोध को शीघ्रातिशीघ्र दूर करना होगा अन्यथा इस

असमानता के शिकार लोग मुश्किल से बनाए गये इस राजनीतिक लोकतन्त्र को ध्वस्त कर देंगे।' आगे हम डॉ. अम्बेडकर के कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण विचारों का अध्ययन करेंगे।

भारतीय लोकतन्त्र और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार

एस.आर. दरापुरी के अनुसार डॉ. अम्बेडकर प्रत्येक नागरिक की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी लोकतन्त्र का प्रथम कर्तव्य मानते थे। वे सम्राज्यवाद और पूंजीवाद के खुले विरोधी थे। उनकी सोच में कार्ल मार्क्स और गौतम बुद्ध के चिचारों का अद्‌भुत समन्वय है। वे पक्के यथार्थवादी थे। उनकी मान्यता थी कि मानव समाज में पूर्ण समानता नही लायी जा सकती। इसीलिए वे धन-दौलत एवं अन्य प्रकार की सामाजिक-शैक्षिक असमानताओं को ही क्रमिक और तार्किक ढ़ग से दूर करना चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर का दृढ़ मत था कि 'हमें अपने लोकतन्त्र को सामाजिक और आर्थिक लोकतन्त्र बनाना चाहिए, क्योंकि इसके बिना राजनीतिक लोकतन्त्र अधिक दिनों तक नही चल सकता।[8] कार्ल मार्क्स ने मानव इतिहास को वर्गो का इतिहास बताया है, किन्तु शोषण और दमन के कुछ दूसरे औजार भी कम महत्वपूर्ण नही रहे हैं। ऐसा ही एक औजार है कुछ समूहों द्वारा दूसरे मानव समूहों की समान मानवीयता के अस्वीकार में हो रहा है, तो वे मानव समाज की इस 'हम बनाम वे' की समस्या को ही सामने रखते हैं। एक ओर वह जातीयता का दम्भ है और दूसरी और है मौजूदा औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े देशों में जीवन विरोधी स्थितियों का तेजी से विकास हो रहा है यह भी वस्तुत: दुनिया का एक प्रकार का नस्लीय विभाजन ही है।.. भारत में मानवाधिकार की लड़ाई सामाजिक न्याय और समता की लड़ाई भी है।'[9] डॉ. अम्बेडकर की यह भी मान्यता थी कि सामाजिक और आर्थिक मुक्ति के बिना जीवन और राजनीतिक स्वतन्त्रता का कानून एवं संविधान द्वारा संरक्षण बेमानी हो जाता है। डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन मूलत: सामाजिक-आर्थिक दर्शन है। उनके निम्नलिखित विचारों से हम उनकी समाजवादी सोच का सही अनुमान लगा सकते हैं और जो भी उन्होंने भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में दिया है उसी के आधार पर आज हम अधिकारों की बात कर पा रहे हैं:

> ''मेरे विचार में लोकतन्त्र की सफलता की पहली शर्त है कि समाज में घोर असमानताएं न हों। वहाँ पर कोई शोषित और दलित वर्ग न हो। वहाँ पर न तो कोई सर्वाधिकार सम्पन्न वर्ग और न ही कोई सर्वथा वंचित वर्ग हो। अन्यथा ऐसा विभाजन, ऐसी परिस्थितियाँ तथा ऐसा सामाजिक

संगठन हमेशा हिंसक क्रांति के बीज संजोये रहता है और लोकतन्त्र द्वारा इसका निदान असम्भव हो जाता है।''

''संवैधानिक विशेषज्ञ यह मान लेते है कि स्वतन्त्रता की सुरक्षा हेतु मौलिक अधिकारों को दे देना ही पर्याप्त है। उनकी मान्यता है कि जब सरकार व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती है। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप को कायम रखते हुए वास्तविक स्वतन्त्रताओं को बढ़ाया जाये। स्वतन्त्रता को केवल सरकारी हस्तक्षेप से पूर्ण मुक्ति के संदर्भ में ही परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए। इससे स्वतन्त्रता की समस्या का समाधान नहीं हो जाता। सरकारी हस्तक्षेप के बिना जंगल राज अर्थात् जिस की लाठी उसकी भैंस वाला समाज होगा।''

''हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि लोग, दलितों सहित केवल कानून और व्यवस्था पर जीवित नहीं रहते, उन्हें तो रोटी चाहिए।''

''बेरोजगार लोगों से पूछिये की उनके लिए मौलिक अधिकारों की क्या उपयोगिता है? यदि किसी बेरोजगार व्यक्ति को अनिश्चित घंटों वाली संवैधानिक नौकरी और किसी मजदूर यूनियन में शामिल होने, संगठन बनाने अथवा धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार के बीच चुनने के लिए कहा जाये तो क्या उसके चुनाव के बारे में कोई शक हो सकता है? वह दूसरी चीज कैसे चुन सकता है? भूखमरी, घरविहीनता, दरिद्रता, बच्चों को स्कूल से दूर रखने जैसी परिस्थितियाँ किसी भी व्यक्ति को अपने मौलिक अधिकार छोड़ने के लिए बाध्य कर सकती है। इस प्रकार बेरोजगार लोग काम तथा जीवन निर्वाह के लिए मौलिक अधिकारों को तिलांजलि देने के लिए मजबूर होंगे।''

''स्पष्टतया यह स्वतन्त्रता जमींदारों को लगान बढ़ाने, पूंजीपतियों को काम के घंटे बढ़ाने और कम मजदूरी देने की छूट देने वाली होगी। यह ऐसी ही होगी।''

''यह अत्यन्त असंतोषजनक स्थिति है कि अधिकांश लोगों को अपनी जीविका कमाने के लिए भार ढोने वाले पशुओं की तरह 14-14 घंटे पसीना बहाना पड़ता है और इस प्रकार वे मनुष्य की अमूल्य धरोहर मस्तिष्क एवं मन का प्रयोग करने के अवसरों से सर्वथा वंचित रह जाते हैं। पूर्व में कैसा भी रहा हो, परन्तु वर्तमान समय में वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने इसे सम्भव बना दिया है। कुछ लोगों द्वारा दूसरों का शोषण इसलिए सम्भव हो पा रहा है कि उत्पादन के साधनों, भूमि और उद्योगों पर समाज का नियन्त्रण नहीं है। जब यह सम्भव कर दिया जायेगा, तो मैं इसे वास्तविक क्रांति मानूंगा।''

डॉ. अम्बेडकर संवैधानिक व्यवस्था में विश्वास रखते थे और उन्होंने राजशक्ति की सृजनात्मक भूमिका पर जोर दिया। सही मायने में लोकतान्त्रिक राज लोक कल्याणकारी होगा। उनका मानना था कि ऐसे राज का उपयोग जमींदारों और पूंजीपतियों जैसे निहित स्वार्थों को अनुशासित करने और उनके सामाजिक-आर्थिक आधार को खत्म करने के लिए किया जा सकता है। इनके अधिकारों को सीमित किये बगैर आमजन को स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। अत: डॉ. अम्बेडकर ने कहा, ''एक अर्थव्यवस्था, जिसमें लाखों मजदूर उत्पादनरत हो, समय-समय पर किसी न किसी को नियम बनाने पड़ेंगे ताकि मजदूरों को काम मिल सकें और उद्योग चलते रहे, अन्यथा जीवन असम्भव हो जायेगा। राजकीय नियन्त्रण से स्वतन्त्रता का मतलब होगा व्यक्तिगत मालिकों की तानाशाही।''[10]

डॉ. अम्बेडकर का चिंतन हमेशा गरीब लोगों के अधिकारों के लिए लड़ते रहे, लेकिन उन्हें पता था कि मात्र स्वतन्त्रता से ही भारत की सामाजिक व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता बल्कि इसके लिए एक लोकतान्त्रिक व्यवस्था भी जरूरी थी, ताकि निम्न वर्ग को ओर जुल्म न सहने पड़े। ''डॉ. अम्बेडकर नहीं चाहते थे कि केवल वर्ग विशेष के हाथों में सत्ता शक्ति केन्द्रित हो जो वर्ग अल्प शक्ति के दुरुपयोग से अछूतों पर जुल्म करता है वह वर्ग अधिक सत्ता सम्पन्न होने पर नहीं करेगा, इसकी क्या गारंटी थी? मामूली हथियारों से अछूतों को घायल करने वाले स्वराज की तलवार मिलने पर उनकी गर्दन काटेंगे। इसीलिए वे स्पृश्य हिन्दुओं में बिना सुधार के अंग्रेजों को स्पृश्य के हाथों स्वराज सत्ता हस्तांतरण के पक्ष में नहीं थे।''[11]

भारत में धर्म का मुद्दा शुरु से ही लोगों के शोषण का एक मजबूत आधार रहा है लेकिन डॉ. अम्बेडकर जी के विचारों ने तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था के लिए भी चुनौतियाँ खड़ी कर दी थी जिसकी भरपाई तथाकथिक शोषक वर्ग आज तक नहीं कर पाया है। ''डॉ. अम्बेडकर जिस समाजवाद की बात करते हैं उसकी सबसे बड़ी जरूरत भारत के दलित वर्ग को ही है। समाजवाद दलित वर्गों की मुक्ति का दर्शन है। हिन्दूवादी और पूंजीवादी दोनों शक्तियाँ दलित वर्गों से इसलिये भयभीत है कि वे उनके सम्राज्य के लिए खतरा बन सकते हैं, इसीलिए वे इस खतरे से सावधान होकर अपने सारे संसाधन धर्म के प्रचार में झोंके हुए है।। दलितों और आदिवासियों को इसी और मुस्लमान बनने से इसलिए रोकते हैं क्योंकि इससे उनके ''राष्ट्रवाद का सिद्धान्त'' खतरे में पड़ जाता है।... आज 21वीं सदी में धर्म का शोर इसलिए ज्यादा है, क्योंकि शोर मचाने वाले लोग उनकी अप्रासंगिकता को जानते हैं। जरूरत है, देश की जनता भी इस अप्रासंगिकता को समझे।''[12]

लोकतान्त्रिक अधिकारों का संघर्ष करने वाले को आम आदमी की लोकतान्त्रिक अधिकारों के अर्थ और महत्व के बारे सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा शिक्षित करना चाहिए। उन्हें लोकतान्त्रिक अधिकारों के संघर्ष के प्रति ही संगठित और तत्पर रहना चाहिए। सार्वजनिक, सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा ही हम लोकतान्त्रिक अधिकारों को प्राप्त कर सकते हैं और समाज में अस्थिरता अन्याय फैलाने वाले तत्वों के प्रति जागरूक रहकर, उन्हें शासन और सरकार द्वारा किये गये जनता विरोधी कानूनों और निर्णयों का पूरा विरोध करना चाहिए तभी वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। संवैधानिक, कानूनी और शासन व्यवस्था में सुधार लोकतान्त्रिक अधिकारों का मुख्य लक्ष्य होता है और वह तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हम सार्वभौम न्याय व्यवस्था के प्रति विश्वासी और प्रयत्नशील रहे, बेशक वर्तमान परिस्थितियों में हमें अपना उद्देश्य दुरूह लगे लेकिन यह असम्भाव्य नही है, क्योंकि हर एक प्रयास एक सपने से ही शुरू होता है। लोकतान्त्रिक अधिकार संविधान-व्यवस्था से ही मिलते हैं और नागरिकों को उस व्यवस्था में विश्वास रखते हुए अपने आन्दोलन को आगे बढ़ाना चाहिए तथा राज्य द्वारा किये जा रहे अधिकारों के हनन के प्रति एकजुट रहकर संघर्ष करना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर के चिंतन में समाजवाद की रूपरेखा बहुत स्पष्ट और गहरी थी। भारत के सामाजिक रूपान्तरण और आर्थिक विकास के लिए वे इसे अपरिहार्य मानते थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि केवल अधिकारों पर जोर देना ही पर्याप्त नही है। एक व्यक्ति के अधिकार दूसरे के लिए तभी आकर्षण या सम्मानजनक होंगे जब उनका उपयोग रचनात्मक ढ़ग से किया जाये और सभी के सामाजिक हितों का भी ख्याल रखा जाये, क्योंकि अधिकरों की गरीमा भी तभी बनती है जब कर्तव्यों का भी उचित ढ़ग से पालन किया जाये। अत: लोकतान्त्रिक अधिकारों की प्राप्ति किसी भी समाज में लोकतन्त्र की सही स्थापना के लिए अपने आप में एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य शर्त है और डॉ. अम्बेडकर का हर प्रयास इसी तरफ था ना कि किसी विशेष वर्ग के हितों का ध्यान रखकर उन्होंने संघर्ष किया। भारतीय समाज में उनका चिंतन एक आदर्श है जिसे हम जाति, वर्ग, धर्म की विशेष परिधि में नही बांध सकते हैं, इसीलिए भारत में लोकतान्त्रिक अधिकारों के संदर्भ में उनका योगदान अमूल्य है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. दिपांकर चक्रवर्ती, ''इन सर्च ऑफ ए रियलिस्टिक एप्रोच टुवर्डस द ह्यूमनराइट्स मूवमेंट इन इंडिया'' डेमोक्रेटिक राइट्स मूवमेंट इन इंडिया, अरविन्द ममोरियल ट्रस्ट, लखनऊ, 2014, पृष्ठ 34, 36.

2. कृष्ण सिंह, ''लोकतन्त्र और लोकतान्त्रिक मूल्यों का संघर्ष'' समयांतर, फरवरी 2014, http://www.samayantar.com/editorial-democracy-and-casteism/
3. वही.
4. आनन्द तेलतुम्बड़े, ''जाति उन्मूलन: इतिहास वर्तमान और भविष्य'' समयांतर, फरवरी 2014, अनुवादक अभिषेक श्रीवास्तव, http://www. samayantra.com/elimination-race-history-present-and-future/
5. मणिराम शर्मा, ''भरतीय संविधान एवं लोकतान्त्रिक कानून'', लोकतान्त्रिक अधिकार, सोमवार 30 मई 2011, http://justicemiracle-mrp.blogspot.in/2011/05/blog-post_29.html
6. वही.
7. राजकिशोर (सं.), मानवाधिकारों का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 5-6.
8. एस.आर. दारापुरी, ''डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन: भूमण्डलीकरण एवं निजीकरण'', दलित मुक्ति, सोमवार, 15 अप्रैल 2013, http://dalitmukti.blogspot.in/2013/04/blog-post.html
9. राजकिशोर (सं.), मानवाधिकारों का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ 7-8.
10. यहाँ पर उद्धृत डॉ. अम्बेडकर के सारे विचार एस.आर. दारापूरी द्वारा लिखित ''डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक दर्शन: भूमण्डलीकरण एवं निजीकरण'' से लिए गये है।
11. डॉ. अम्बेडकर, मूकनायक, संकलन एवं अनुवाद श्योराजसिंह बेचैन, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2008, पृष्ठ 15.
12. कंवल भारती, राहुल सांकृत्यायन औश्र डॉ. अम्बेडकर, साहित्य उपक्रम, 2007, पृष्ठ 85-86.